

चोल काळातील प्रशासन व्यवस्था

रेवणसिध्द रामभाऊ बेरुनगीकर
सोलापूर.



सारांश:

चोल शासकों ने भारी भरकम उपाधि लेनी शुरू की जैसे- चक्रवर्तीगल। चोल वंश में मृत राजाओं की प्रतिमाएं पूजी जाती थीं। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि चोल शासक राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त में विश्वास थे। चोलों से पूर्व भारतीय इतिहास में कुषाण राजाओं के बीच यह प्रचलित थी। चोल शासकों का राज्याभिषेक निम्नलिखित स्थानों पर होता था- तंजौर, गंगइकोडचोलपुरम्, चिदम्बरम् और कांचीपुरम्, जबकि चालुक्य शासकों का राज्याभिषेक पतादकल में होता था। इस अवधि में पुरोहित का कार्य एवं पद महत्वपूर्ण हो गया। पुरोहित न केवल राजगुरु वरन् समस्त धार्मिक एवं आध्यात्मिक बातों में परामर्श देने के अतिरिक्त राजा का विश्वासपात्र एवं पापमोचक था।



चोल प्रशासन-

चोल प्रशासन व्यवस्था एक जटिल नौकरशाही पर आधारित थी। राजा प्रशासन का प्रमुख था। चोल राजाओं के अनेक अभिलेख उस समय की प्रशासन-व्यवस्था पर भी प्रकाश डालते हैं। चोल साम्राज्य के विस्तार के साथ राजा की शक्ति और सम्मान में भी वृद्धि हो गई थी। राजा को असीमित शक्तियां प्राप्त थीं, फिर भी राजा प्रशासन में विभागों के प्रमुख से परामर्श लिया करता था। कुछ चोल राजाओं की मूर्तियां भी मन्दिर में स्थापित की गईं और कुछ विशेष मन्दिरों का नाम राजा के नाम पर पड़ा, जैसे तंजौर का राजराजेश्वर मन्दिर।

चोल साम्राज्य में उत्तराधिकार का नियम निश्चित था। राजा अपने जीवन-काल में ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देता था जिसे युवराज कहते थे। युवराज को प्रशासन का अनुभव कराया जाता था और शासन-कार्य में वह अपने पिता की सहायता करता था। **चोल प्रशासन में हम मन्त्रिमण्डल का उल्लेख नहीं पाते।** अभिलेखों से पता चलता है कि सिविल सर्विस का संगठन सुव्यवस्थित था और विभागाध्यक्ष अपने विभाग का कार्य नहीं देखता था। अधिकारियों का उच्च वर्ग पेरुन्द्रम एवं निम्न वर्ग सेरुन्द्रम कहलाता था। अधिकारियों को भू राजस्व में दिया जाने वाला वेतन जीविका कहलाता था। एक विशेष अधिकारी ओलङ्कुट्टम राजा द्वारा जारी आदेशों को क्रियान्वयन होता देखता था। किसी विशेष क्षेत्र की सुरक्षा के लिए शक्तिशाली अधिकारियों को सुरक्षाकर **पाडिकावलकूली** देना पड़ता था।

चोल प्रशासन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद राजा का होता था। चोल कालीन शासन व्यवस्था राजतंत्रात्मक थी। राजा का पद वंशानुगत व्यवस्था पर आधारित था। राजा के लिए एक मंत्रिपरिषद् की व्यवस्था थी। राजकीय आदेशों का क्रियान्वयन 'ओलै' नाम के अतिविशिष्ट अधिकारी किया करते थे। राजा के प्रधान सचिव को 'ओलनायमकम्' कहा जाता था। चोल प्रशासन में भाग लेने वाले उच्च पदाधिकारियों को 'पेरुन्दनम्' एवं निम्न श्रेणी के पदाधिकारियों को 'शेरुन्दनम्' कहा जाता था। इस समय अधिकारियों के वेतन का भुगतान पकद रूप में न करके भूमि के रूप में किया जाता था। 'विडैयाधिकारिन' नाम का अधिकारी कार्य प्रेषक किराने के रूप में कार्य करता था। राज्य के उच्च अधिकारियों (मंत्रियों) को 'उडनकुट्टम्' कहा जाता था।

प्रशासकीय इकाइयाँ

प्रशासन की सुविधा हेतु सम्पूर्ण चोल साम्राज्य 6 प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तों को 'मण्डलम्' कहा जाता था। प्रायः राजकुमारों को यहां का प्रशासन देखना पड़ता था। मण्डलम् को कोट्टम (कमिश्नरी) में, कोट्टम को नाडु (ज़िले) में एवं प्रत्येक नाडु को कई कुरमों (ग्राम समूह) में विभक्त किया गया था। बड़े-बड़े शहर या गांव एक अलग कुरम बन जाते थे और तनियूर या तंकरुम कहलाते थे। मण्डलम् से लेकर ग्राम स्तर तक के प्रशासन हेतु स्थानीय सभाओं का सहयोग लिया जाता था। 'नाडु' की स्थानीय सभा को 'नादूर' एवं नगर की सभाओं को क्रमशः श्रेणी और पूग कहा जाता था। चोल सम्राट परान्तक प्रथम के शासन के 12वें एवं 14वें वर्ष के प्रसिद्ध 'उत्तरमेरूर अभिलेखों' में चोल कालीन स्थानीय स्वशासन एवं ग्राम प्रशासन व्यवस्था का साक्ष्य मिलता है। स्थानीय स्वशासन चोल शासन प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषता थी। स्थानीय स्वशासन में 'उर' तथा 'सभा' व महासभा के सदस्य व्यस्क होते थे। उर सर्वसाधारण लोगों की समिति थी, जिसका कार्य होता था- सार्वजनिक कल्याण के लिए तालाबों व बगीचों के निर्माण हेतु गांव की भूमि का अधिग्रहण करना।

सभा या ग्राम सभा

यह मूलतः अग्रहारों व ब्राह्मणों बस्तियों की संस्था थी। इसके सदस्यों को 'पेरुमक्कल' कहा जाता था। 'वारियम' (कार्यकारिणी समिति) की सदस्यता हेतु 35 से 70 वर्ष के बीच तक के व्यक्तियों को अवसर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त वह कम से कम डेढ़ एकड़ भूमि का मालिक एवं वैदिक मंत्रों का ज्ञाता हो। इन अर्हताओं को पूरा करके चुने गये 30 सदस्यों में से 12 ज्ञानी व्यक्तियों को वार्षिक समिति 'सम्बत्सर वारियम्' के लिए चुना जाता था और शेष बचे 18 सदस्यों में 12 उद्यान समिति के लिए एवं 6 को तड़ाग समिति के लिए चुना जाता था।

सभी की बैठक गांव में मन्दिर के वृक्ष के नीचे एवं तालाब के किनारे होती थी। महासभा को 'पूरुगारि', इसके सदस्यों को 'पेरुमक्कल' एवं समिति के सदस्यों को 'वारियप्पेरुमक्कल' कहा जाता था। व्यापारियों की सभा को 'नगरम्' कहा जाता था। नगरों में व्यापारियों के विभिन्न संगठन थे, जैसे- मणिग्राम, वलंजीयर आदि। चोल काल के 'उर' का रूप लघुगणतंत्र जैसा था। इस समय सार्वजनिक भूमि महासभा के अधिकार क्षेत्र में होती थी। महासभा ग्रामवासियों पर कर लगाने, उसे वसूलने एवं बेगार लेने का भी अधिकार अपने पास रखती थी। सभा या महासभा वर्ष में एक बार केन्द्रीय सरकार को कर देती थी। महासभा की आय और व्यय का निरीक्षण केन्द्र सरकार के अधिकारी किया करते थे। केन्द्र सरकार असामान्य स्थितियों में ही ग्रामसभा के स्वायत्त शासन में हस्तक्षेप करती थी।

आय का स्रोत

राज्य की आय का मुख्य साधन भूराजस्व था। भूराजस्व निर्धारित करने से पूर्व भूमि का सर्वेक्षण, वर्गीकरण एवं नाप-जोख कराई जाती थी। तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि, राजराज प्रथम एवं कुलोटुंग के पैर की माप ही भूमि की लम्बाई मापने की इकाई बनी। भूमिकर भूमि की उर्वरता एवं वार्षिक फसल चक्र देखने के बाद निर्धारित किया जाता था। सम्भवतः चोल काल में भूमि कर उपज का एक तिहाई हुआ करता था, जिसे अन्न व नक़द दोनों रूपों में लिया जाता था। चोल अभिलेखों में भूमि कर के अतिरिक्त अन्य करों का उल्लेख मिलता है।

राजस्व विभाग का उच्च अधिकारी 'वरित्पोत्तगकक्' कहा जाता था। इन करों के अतिरिक्त चोल राजा निकटवर्ती क्षेत्रों की लूट मार से भी अपनी आय बढ़ाते थे। विवाह समारोह पर भी कर लगता था। अभिलेखों में करो व वसूलियों के लिए 'हरै' या 'वरि', 'मरुन्पाडु' और 'द्रंडम्' शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्न का मान एक कलम (तीन मन) था। बेलि भूमि माप की इकाई थी। सोने के सिक्के को काशु कहा जाता था। चोल अभिलेखों में भूमि कर के अतिरिक्त अनेक प्रकार के कर लगाए जाते थे, जैसे- मरमज्जाडि (उपयोगी वृक्षकर), कडमै (सुपाड़ी के बागान पर कर), मनैइरै (गृहकर), कडैइरै (व्यापारिक प्रतिष्ठान कर), पेविर (तेलघानी कर), पाडिकावल (ग्राम सुरक्षा कर), मगन्यै (स्वर्णकार, लौहकार, कुम्भकार, बढई आदि के पेशों पर लगाया जाने वाला कर)।

सैन्य संगठन

चोलों की स्थायी सेना में पैदल, गजारोही, अश्वारोही आदि सैनिक शामिल होते थे। इनके पास एक बड़ी नौसेना थी, जो **राजराज प्रथम** एवं **राजेन्द्र प्रथम** के समय में चरमोत्कर्ष पर थी। **बञ्जाल की खाड़ी** चोलों की नौसेना के कारण ही 'चोलों की झील' बन गई। 'बड़पेरै कैककोलस' राजा की व्यक्तिगत सुरक्षा में तैनात पैदल दल को कहते थे, जबकि 'कुजिर-मल्लर' गजारोही दल को, 'कुदिरैचैवगर' अश्वारोही दल को, 'बिल्लिगल' धनुर्धारी दल को, 'कैककोलस' पैदल सेना में सर्वाधिक शक्तिशाली को, 'सैगुन्दर' भाला से प्रहार करने में निपुण सैनिकों को एवं 'वलैक्कार' राजा की अतिविश्वसनीय अश्वारक्षक को कहते थे। सेना गुल्मों व छावनियों (कण्गम) में रहती थी। चोल काल में सेना की टुकड़ी का नेतृत्व करने वाले को नायक तथा सेनाध्यक्ष को महादण्णनायक कहा जाता था। सेना में अनेक सेनापति **ब्राह्मण** थे, जिन्हें ब्रह्माधिराज कहा जाता था।

न्याय व्यवस्था

राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। चोल अभिलेखों में राजा के धर्मासन का अंतिम न्याय प्राप्त करने के रूप में उल्लेख है, जहाँ पर राजा धर्मासनभट्ट (स्मृतिशास्त्र ज्ञाता, ब्राह्मण एवं विद्वान) की सहायता से न्याय करता था। छोटे विवादों पर स्थानीय निगम निर्णय देते थे। चोलों की दण व्यवस्था में आर्थिक दण एवं सामाजिक अपमान का दण दिया जाता था। प्रायः आर्थिक दण काशु (मुद्रा) में दिया जाता था।

आय के साधन-

राजा की आय का प्रमुख साधन भूमि-कर था। भूमि-कर को एकत्र करने का कार्य ग्रामसभाएं करती थीं। किसानों को इस बात की सुविधा थी कि वे भूमिकर चाहे नकद दे अथवा अनाज के रूप में। भूमिकर उपज का 1/3 भाग था। विशेष स्थिति, जैसे अकाल पड़ने पर भूमिकर माफ कर दिया जाता था।

राजा की आय के अन्य स्रोत थे- व्यवसाय कर, आयत कर, चुष्ठी कर, वनों और कारखानों से आय इत्यादि। व्यव की प्रमुख मर्दे थीं राजा, राजपरिवार और उसका दरबार, नागरिक प्रशासन, सेना, मंदिर और सार्वजनिक निर्माण तथा धार्मिक अनुदान इत्यादि। भू-राजस्व को कदमईकहा जाता था। राजस्व कर-आयम, सुपारी कर-कण्मई, व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर कर-कडैडरै, द्वारकर-वाशल्परम्, आजीवकों पर कर-आजीवक्काशु, नर-पशुधन कर-किण्क्काशु, वृक्षकर-मरमज्जाणि, गृहकर-मनैडरै, ग्राम सुरक्षा कर-पणिकावल, व्यवसाय कर-मगनमै, तेलघानी कर-पेविर।

सैनिक प्रशासन-

चोल राजाओं ने एक विशाल सेना का सञ्चालन किया। सेना के प्रमुख अङ्ग थे- पैदल, घुड़सवार, हाथी और नौसेना। सेना में अनुशासन पर बड़ा जोर दिया जाता था। सेना को नियमित रूप से ट्रेनिंग दी जाती थी और विशेष सैनिक शिविर (कण्गम) भी लगाये जाते थे। अश्व सेना के लिये बहुमूल्य अरबी घोड़ों को खरीदा जाता था। इनमें अधिकांश घोड़े दक्षिण भारत की जलवायु के कारण मर जाते थे और इस प्रकार राज्य का बहुमूल्य धन विदेशों को चला जाता था।

चोल सेना की एक विशेषता जहाजी बेड़े का सञ्चालन था। इस शक्तिशाली जहाजी बेड़े के कारण ही चोल राजाओं ने समुद्र पार अनेक द्वीपों को विजय किया था। बञ्जाल की खाड़ी एक चोल झील बन गई थी। वर्तमान समय की तरह, उस समय भी सेना में अनेक पद (रैंक) होते थे जैसे **नायक, महादण्णनायक** इत्यादि। विशेष वीरता दिखाने पर परमवीरचक्र की तरह **क्षत्रिय शिखामणि** की उपाधि दी जाती थी। यद्यपि सेना में अनुशासन पर जोर दिया जाता था, फिर भी चोल सैनिकों का विजित शत्रुओं के प्रति व्यवहार बहुत बर्बर होता था। स्त्रियों और बच्चों पर भी अमानुषिक अत्याचार किये जाते थे। सेना में अलग-अलग हिस्सों के अलग-अलग नाम थे। राजा की व्यक्तिगत सुरक्षा में पैदल सेना-बड़पेरैकैककोलस, गजारोही दल-कुजिरमल्लर, अश्वारोही दल-कुचैवगर, धनुर्धारी दल-बल्लिगल, पैदल सेना में सर्वाधिक शक्तिशाली- कैककोलर, भाला प्रहार करने वाला दल- सैगुन्दर, राजा का अति विश्वसनीय अश्वारक्षक- वलैक्कार कहलाते थे।

सेना गुल्म एवं छावनियों (कड़गम) में रहती थी। सेना की टुकड़ी का नेतृत्व करने वाला नायक तथा सेनाध्यक्ष महादंडनायक कहलाता था।

प्रादेशिक प्रशासन-

चोल साम्राज्य प्रान्तों में विभाजित था जिन्हें **मण्डलम्** कहा जाता था। चोल साम्राज्य में 8 मंडल थे। मण्डल का प्रशासन करने के लिए किसी राजकुमार या उच्च अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी जो राजा के वाइसराय के रूप में कार्य करता था। प्रत्येक मंडल **कोट्टम** में बंटा हुआ था। कोट्टम **नादुओं** में विभाजित थे। **नादु** सम्भवतः आधुनिक जिले के समान था। कई ग्रामों के समूह को **कुर्रम** कहते थे।

स्थानीय स्वशासन-

चोल प्रशासन की प्रमुख विशेषता उसका स्थानीय स्वशासन था। ग्राम स्वशासन की पूर्ण इकाई थे और ग्राम का प्रशासन ग्रामवासी स्वयं करते थे। चोल शासकों से इस अभिलेखों से इस व्यवस्था पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है।

व्यवस्था-

आर्थिक दंड सामाजिक अपमान पर आधारित होते थे। आर्थिक दंड में काशु लिया जाता था जो संभवतः सोने की मुद्रा थी।

अभिलेखों से प्राप्त जानकारी के अनुसार ग्राम को 30 भागों में विभाजित कर दिया जाता था। निश्चित योग्यता रखने वाले एक व्यक्ति को चुना जाता था। निम्नलिखित योग्यता आवश्यक थी- (1) वह उस ग्राम का निवासी हो। (2) उसकी आयु 35 और 70 वर्ष के बीच हो। (3) एक-चौथाई वेलि (लगभग डेढ़ एकड़) से अधिक भूमि का स्वामी हो। (4) अपनी ही भूमि पर बनाये मकान में रहता हो। (5) वैदिक मन्त्रों और ब्राह्मण ग्रन्थों का सम्यक ज्ञान हो।

1. जो पिछले तीन वर्षों से किसी समिति का सदस्य रहा हो।
2. जिसने सदस्य के रूप में आय-व्यय का लेखा-जोखा अपने विभाग को न दिया हो।
3. भयंकर अपराधों में अपराधी घोषित हो।

इस प्रकार की योग्यता रखने वाले 30 भागों में से प्रत्येक में एक व्यक्ति को घड़े में से निकाले हुए पर्चे के आधार पर चुन लिया जाता था। नाम के ये पर्चे किसी बालक द्वारा निकलवा लिए जाते थे। इन सदस्यों का कार्यकाल 1 वर्ष था। इन सदस्यों में 12 स्थायी समिति के, 12 उपवन समिति के और 7 तालाब समिति के लिए चुने जाते थे। समिति को वारियम कहते थे और यह ग्राम सभा के कार्यों का संचालन करती थी। ग्राम सभा के कार्यों के लिए कई समितियां होती थीं।

ग्राम सभा के अनेक कार्य थे। यह भूमिकर एकत्र करके सरकारी खजाने में जमा करती थी। तालाबों और सिंचाई के साधनों का प्रबन्ध करती थी। ग्राम के मन्दिरों और सार्वजनिक स्थानों की देखभाल, ग्रामवासियों के मुकदमों का फैसला करना, ग्राम की सड़कों को बनवाना, ग्राम में औषधालय खोलना, ग्राम के बाजारों और पेठों का प्रबन्ध करना, इत्यादि ग्राम सभा के कार्य थे।

ग्राम सभा के अधिवेशन मन्दिरों में होते थे। केन्द्रीय सरकार गांव के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती थी। इस प्रकार ग्राम स्थानीय स्वशासन की एक महत्वपूर्ण इकाई था।

व्यापारियों से संबंधित हितों की देखभाल हेतु-मणिग्रामम्, वलंजियार, नानादेशी जैसे समूह थे। धार्मिक हित समूहों में **मूलपेरुदियार** था। यह मंदिरों की व्यवस्था की निगरानी करता था। संपूर्ण साम्राज्य मंडलों (प्रान्तों) में बंटा हुआ था। प्रान्तों का विभाजन वलनाडु या नाडु में होता था। उसके नीचे गांव का समूह **कुर्रम** या **कोट्टम** कहलाता था। सबसे नीचे गांव था। ग्राम की स्थिति पट्टे के अनुसार भिन्न प्रकार की होती थी। गांवों की तीन श्रेणियाँ थीं- ऐसे ग्राम सबसे ज्यादा होते थे जिनमें अंतर्जातीय आबादी होती थी एवं जो भू-राजस्व थे। सबसे कम संख्या में ऐसे ग्राम होते थे जो

ब्रह्मदेय कहलाते थे एवं इनमें पूरा ग्राम या ग्राम की भूमि किसी एक ब्राह्मण समूह को दी गई होती थी। ब्रह्मदेय से संबंधित अग्रहार अनुदान होता था जिसमें ग्राम ब्राह्मण बस्ती होता था एवं भूमि अनुदान में दी गई होती थी। ये भी कर मुक्त थे, किन्तु ब्राह्मण अपनी इच्छा से निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था कर सकते थे।

देवदान-

ऐसे गांव देवदान कहलाते थे जो मंदिरों को दान में दिए गए होते थे। ऐसे गांवों में भू-राजस्व वसूला जाता था किन्तु उसकी वसूली सरकारी अधिकारियों के बजाए मंदिर के अधिकारी करते थे। ग्राम स्तर पर 3 प्रकार की संस्थाएं थीं। साधारण गांव में उर नामक संस्था थी जबकि ब्रह्मदेव या अग्रहार गांव में सभा और ऐसी बस्ती जिनमें व्यापारी निवास करते थे, वहां नगरम नामक संस्था गठित होती थी। वैसे गांव जिनमें ब्राह्मणों एवं गैर ब्राह्मण जनसंख्या निवास करती थी – सभा एवं उर दोनों गठित की जाती थी। परान्तक प्रथम के समय के **उत्तरमेरु अभिलेख (919-929)** से सभा की कार्यवाही पर प्रकाश पड़ता है। सबसे प्राचीन उत्तरमेरु अभिलेख पल्लव शासक दन्तिवर्मन् के काल का है। सभा एक औपचारिक संस्था थी जो ग्रामीणों की एक गैर औपचारिक संस्था उरार के साथ मिलकर काम करती थी। सभा अपनी समितियों के माध्यम से कार्य करती थी। यह वारियम कहलाती थी। समिति में 30 सदस्य चुने जाते थे। इन 30 सदस्यों में से 12 ज्ञानी व्यक्तियों की एक वार्षिक समिति गठित की जाती थी जो **समवत्सर वारियम** कहलाती थी। तोट्टावारियम (उपवन समिति), एनवारियम (सिंचाई समिति), पंचभार (पंच बनकर झगड़ों का निपटारा), पोनवारियम (स्वर्ण समिति)। सभा को पेरुगुरी कहा गया है। इसके सदस्यों को पेरुमक्कल कहा जाता था। सन्यासियों एवं विदेशियों की समिति को उदासिकवारियम कहा जाता था। उर की कार्यकारिणी समिति को उलुंगनाट्टार कहा जाता था। प्रायः सभी बैठकें मंदिर के अहाते में होती थीं। ढोल बजाकर लोगों को एकत्रित किया जाता था।

संदर्भ:

1. Devare, Hema (2009), "Cultural Implications of the Chola Maritime Fabric Trade with Southeast Asia", in **Kulke, Hermann**; Kesavapany, K.; Sakhuja, Vijay, Nagapattinam to Suvarnadwipa: Reflections on the Chola Naval Expeditions to Southeast Asia, Institute of Southeast Asian Studies, ISBN 978-9-81230-937-2
2. Eraly, Abraham (2011), The First Spring: The Golden Age of India, Penguin Books, ISBN 978-0-67008-478-4
3. Gough, Kathleen (2008), Rural Society in Southeast India, Cambridge University Press, ISBN 978-0-52104-019-8
4. Harle, J. C. (1994), The art and architecture of the Indian Subcontinent, Yale University Press, ISBN 0-300-06217-6
5. Mukund, Kanakalatha (2012), Merchants of Tamilakam: Pioneers of International Trade, Penguin Books India, ISBN 978-0-67008-521-7
6. Nagasamy, R. (1970), Gangaikondacholapuram, State Department of Archaeology, Government of Tamil Nadu
7. Nagasamy, R. (1981), Tamil Coins – A study, Institute of Epigraphy, Tamil Nadu State Dept. of Archaeology
8. Paine, Lincoln (2014), The Sea and Civilization: A Maritime History of the World, Atlantic Books, ISBN 978-1-78239-357-3.
9. Prasad, G. Durga (1988), History of the Andhras up to 1565 A. D., P. G. Publishers.
10. Rajasuriar, G. K. (1998), The history of the Tamils and the Sinhalese of Sri Lanka.